ज्ञान तत्व 364

मंथन कमांक 58

राजनीति में कुछ नाटक और परिणाम

कुछ सर्वस्वीकृत सिद्धान्त हैः–

(1) देश का प्रत्येक व्यक्ति तीन प्रकार के शोषण से प्रभावित हैः–(1) सामाजिक शोषण (2) आर्थिक शोषण (3) राजनैतिक शोषण। स्वतंत्रता के पूर्व सामाजिक शोषण अधिक था, आर्थिक राजनैतिक कम। स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक शोषण अधिक हो गया, आर्थिक सामाजिक कम।

(2) व्यक्ति तीन प्रकार के होते हैंः–(1) शरीफ (2) समझदार (3) धूर्त। समाज में शरीफ लोगों की संख्या 95 प्रतिशत से अधिक होती है। धूर्तों की संख्या तीन चार प्रतिशत होती है और समझदारों की संख्या नगण्य।

(3) समाज के समक्ष समस्याएँ पांच प्रकार की होती हैं–(1) वास्तविक (2) कृत्रिम (3) प्राकृतिक (4) भूमण्डलीय (5) अस्तित्वहीन। समाज प्राथमिकताओं के कम में उपरोक्त कम से समाधान चाहता है तो राजनीति ठीक विपरीत कम से समाधान करती है।

(4) लोकतंत्र में शासन को लोकहित की अपेक्षा लोकप्रियता की अधिक चिंता बनी रहती है जबकि तनाशाही में ऐसा नहीं होता। तानाशाही और लोकतंत्र की तुलना में लोकस्वराज्य आदर्श स्थिति होती है।

(5) भारत में कुल कानूनों के दो तीन प्रतिशत ही कानून आवश्यक है। शेष सभी अव्यवस्था फैलाने के उद्देश्य से बनाये गये हैं। कानूनों की संख्या बिल्कुल कम कर देना चाहिये।

भारत में लोकतंत्र है। लोकतंत्र का अधिक से अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से राजनेता निरंतर लोकहित को छोड़कर लोकप्रिय बनने का प्रयास करते रहते है। इसके लिए उन्हें दस प्रकार के नाटक करने पड़ते हैं–

(1) प्रशासनिक समस्याओं का आर्थिक सामाजिक, अर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक सामाजिक तथा सामाजिक समस्याओं का आर्थिक प्रशासनिक समाधान करने का प्रयास।

(2) समाज में आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके वर्ग विद्वेश फैलाना और वर्ग संघर्ष तक ले जाना।

(3) किसी भी समस्या का इस तरह का समाधान खोजना और करना जो किसी नई समस्या को पैदा करें।

(4) राष्ट्र शब्द को उपर उठाकर समाज शब्द को निरंतर नीचे गिराना। सामाजिक भावनाओं को कमजोर करके राष्ट्रीय भावना को सशक्त करना।

(5) वैचारिक मुद्दों पर होने वाली चर्चा को कमजोर करके भावनात्मक मुद्दों पर चर्चा को जारी रखना।

(6) समाज को शासक और शासित के रुप में बांटकर समाज को शासन का मुखापेक्षी बनाना।

(7) गैरकानूनी और अनैतिक को भी इस प्रकार अपराध प्रचारित करना जिससे सम्पूर्ण समाज स्वयं को किसी न किसी रुप में अपराधी मानने लगे और उसका मनोबल गिरा रहे।

(8) शासन की भूमिका बिल्लियों के बीच बंदर के समान हो। बंदर चाहता है कि बिल्लियों की रोटी कभी बराबर न हों, बंदर निरंतर बराबर करता हुआ दिखे तथा छोटी रोटी वाली बिल्ली के मन में असंतोष की ज्वाला निरंतर जलती रहे।

(9) प्रजातांत्रिक तरीके से निरंतर आर्थिक असमानता को बढाया जाये। इसके लिए श्रमशोषण को सर्वाधिक सुरक्षित मार्ग माना जाता है।

(10) सुरक्षा और न्याय की जगह पर जनकल्याणकारी कार्यो को अधिक प्राथमिकता दी जाये।

उपरोक्त दस नाटकों में से इस लेख के माध्यम से हम केवल पहले कम पर चर्चा कर रहे है। समस्याएँ तीन प्रकार की होती हैं– (1) सामाजिक (2) आर्थिक (3) आपराधिक। राज्य को न्याय और सुरक्षा के निमित्त ही बनाया जाता है। सुरक्षा और न्याय उसका दायित्व होता है और इस कार्य के लिए राज्य को अनेक प्रकार की प्रशासनिक शक्तियां तथा सुविधायें भी समाज के द्वारा दी जाती हैं। सुरक्षा और न्याय के अतिरिक्त अन्य सामाजिक आर्थिक समस्याओं का समाधान राज्य का स्वैच्छिक कर्तव्य होता है, दायित्व नहीं। राज्य जब समाज को धोखा देने के निमित्त नाटक करना शुरु करता है तब वह विपरीत तरीके से समस्याओं का समाधान प्रारंभ करता है। राज्य चोरी, डकैती, लूट, बलात्कार, मिलावट, जालसाजी, धोखाधडी जैसे गंभीर आपराधिक मामलों में प्रशासनिक हस्तक्षेप की अपेक्षा हृदय परिवर्तन अथवा आर्थिक समाधान को अधिक महत्व देता है। सब प्रकार के आपराधिक कार्यो का प्रशासनिक तरीके से ही समाधान संभव है। लेकिन हम देख रहे है कि नक्सलवाद कश्मीर का आतंकवाद अथवा

डकैती सरीखी भी आपराधिक घटनाओं के समाधान के लिए या तो आर्थिक विषमता को कारण बताया जा रहा है या नैतिक पतन को। जबकि इन दोनों का ऐसी घटनाओं से न तो कोई संबंध होता है न ही ये कोई समाधान कर सकती हैं। इसके ठीक विपरीत जुआ, शराब, वैश्यावृत्ति सरीखी नैतिक पतन की सामाजिक बुराईयां पूरी तरह हृदय परिवर्तन से सुलझ सकती है किन्तु राज्य ऐसे मामलों में प्रशासनिक हस्तक्षेप करके अपनी जेलों में भीड़ बढ़ाता रहता है। छुआछूत अथवा जाति प्रथा शुद्ध रुप से सामाजिक समस्या है प्रशासनिक नहीं। किन्तु राज्य इनमें भी कानून बनाकर निरंतर हस्तक्षेप करता है। गरीबी बेरोजगारी आर्थिक समस्यायें हैं। इनका आर्थिक आधार पर समाधान भी संभव है किन्तु राज्य आर्थिक मामलों में भी प्रशासनिक अथवा सामाजिक समाधान के प्रयास करता रहता है।

महिला और पुरुष के बीच के संबंध बलात्कार को छोडकर अन्य सभी मामलों में सामाजिक हैं या आर्थिक हैं। किसी भी रुप में इन संबंधों में प्रशासनिक हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। विवाह भी एक सामाजिक व्यवस्था है किन्तु राज्य इस प्रकार के महिला पुरुष के आपसी संबंधों में भी हस्तक्षेप करके समस्यायें पैदा करता है। विवाह, दहेज, तलाक, परिवार व्यवस्था, सम्पत्ति का उत्तराधिकार जैसे सामाजिक मामलों में कानूनी हस्तक्षेप अनावश्यक हैं। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करने की प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था है। स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का प्राकृतिक और मौलिक अधिकार है। राज्य का काम स्वतंत्रता की सुरक्षा करना है किन्तु राज्य हस्तक्षेप करके ऐसी स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में बाधक बनता हैं। राज्य का काम असमान योग्यताओं को समान करने का प्रयास नहीं है किन्तु राज्य ऐसा करता है। श्रम और बुद्धि के बीच राज्य को स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करने देना चाहिए था अथवा श्रम को कुछ सहायता देनी थी किन्तु राज्य श्रम की तुलना में शिक्षा को अधिक महत्व देकर श्रम को कमजोर करने का प्रयास करता है। इस तरह मेरे ऑकलन के अनुसार राज्य का दायित्व है पांच प्रकार के अपराधों पर अंकुश लगाना। इस मामले में राज्य अपना दायित्व पूरा नहीं करता और समाज को अथवा बाजार को दोष देता है। दूसरी ओर राज्य को चाहिए कि वह सामाजिक और व्यावसायिक मामलों में न्यूनतम हस्तक्षेप करें तो राज्य ऐसे सामाजिक और व्यावसायिक मामलों में हस्तक्षेप करता है। इस हस्तक्षेप के ही परिणाम स्वरुप छः प्रकार की कृत्रिम समस्यायें बढती है—(1) भ्रष्टाचार (2) नैतिक पतन (3) साम्प्रदायिकता (4) जातीय कटुता (5) आर्थिक असमानता (6) श्रम शोषण। यदि राज्य स्वयं को इन छः समस्याएँ से बाहर निकाल ले तो ये छः समस्यायें अपने आप समाप्त हो जायेगी।

मैं स्पष्ट हूँ कि राज्य को प्रशासनिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करने की पहल करनी चाहिए और स्वयं को सामाजिक आर्थिक समस्याओं से दूर कर लेना चाहिए। या कम से कम इतना अवश्य करना चाहिए कि सामाजिक आर्थिक समस्याओं का सामाजिक आर्थिक तरीके से समाधान खोजे। इसमें प्रशासनिक न्यायिक हस्तक्षेप न करें। साथ ही प्रशासनिक समस्याओं का प्रशासनिक न्यायिक समाधान खोजे उसमें हृदय परिवर्तन चरित्र निर्माण जैसे अनावश्यक प्रयोग न करें।

मंथन कमांक 59

अपराध, उग्रवाद, आतंकवाद और भारत

कुछ सर्वस्वीकृत सिद्धांत हैं:—

1 समाज को अधिकतम अहिंसक तथा राज्य को संतुलित हिंसा का उपयोग करना चाहिए। राज्य द्वारा न्यूनतम हिंसा के परिणामस्वरुप समाज में हिंसा बढती है, जैसा आज हो रहा है।

2 व्यक्ति और समाज को अहिंसक होना चाहिए और व्यवस्था को हमेशा हिंसक। भारत में व्यवस्था अहिंसक हो रही है और व्यक्ति समाज हिंसक।

3 भारतीय संस्कृति संतुलित हिंसा की पक्षधर रही है। बुद्ध, महावीर और ईसा मसीह ने अतिवादी अहिंसा का पक्ष लेकर व्यवस्था को असंतुलित किया। हजरत मुहम्मद ने अतिवादी हिंसा का समर्थन करके उसे पलटने का प्रयास किया।

4 अहिंसा या हिंसा परिस्थिति अनुसार मार्ग होता है, सिद्धांत नहीं। गांधी के बाद गांधीवाद ने अहिंसा को सिद्धांत मान लिया तो संघ ने हिंसा को।

5 गांधी और संघ भारत में सामाजिक हिंसा के विस्तार के लिए दोषी हैं। गांधी ने राज्य को न्यूनतम हिंसा की सलाह दी तो संघ ने समाज को अपनी सुरक्षा के लिए हिंसा के उपयोग की सलाह दी।

6 भारतीय संस्कृति समाज और राज्य के सामंजस्य की पक्षधर है। समाज हृदय परिवर्तन पर जोर देता है तो राज्य कठोर दण्ड व्यवस्था पर। इस्लामिक संस्कृति इसके ठीक विपरीत समाज को भी हिंसा की छूट देती है और राज्य को भी।

हम दुनियां की वर्तमान स्थिति का ऑकलन करें तो सम्पूर्ण मानव समाज में हिंसा के प्रति विश्वास बढ रहा है। यह ग्लोबल वार्मिंग खतरनाक स्थिति तक आ गई है। पूरी दुनियां आतंकवाद को सबसे बडा खतरा समझ रही है जबकि आतंकवाद का जन्म हिंसक प्रवृत्ति के विस्तार से होता है। हिंसक प्रवृत्ति धीरे–धीरे उग्रवाद का रुप ग्रहण करती है और उग्रवाद धीरे–धीरे आतंकवाद की दिशा में बढ जाता है। अपराध उग्रवाद और आतंकवाद में अंतर होता हैं। अपराध आमतौर पर व्यक्तिगत स्वार्थ के उद्देश्य तक सीमित होते हैं। उग्रवाद किसी विचारधारा से प्रभावित होता है। आतंकवाद उग्रवाद का अतिवादी स्वरुप होता है। भारत में तीन विचारधारायें उग्रवादी मानी जाती है– 1. संघ विचारधारा 2. इस्लामिक विचारधारा 3. साम्यवादी विचारधारा। इन तीन विचारधाराओं का ही अतिवादी स्वरुप अभिनव भारत, इस्लामिक आतंकवाद तथा नक्सलवाद के रुप में खतरनाक रुप ग्रहण कर लेता है। यह अतिवादी विचारधारा खतरनाक रुप ग्रहण करने के बाद उग्रवादी संगठनों के लिए भी खतरनाक बन जाती है क्योंकि यह आतंकवाद किसी सीमा को नहीं मानता भले ही कोई उसका हित चिंतक ही क्यों न हो। पिछले 100 वर्षो के इतिहास में हिटलर को सबसे बड़ा आतंकवादी माना गया जिसने सिद्धांत के तौर पर यहुदियों की खोज–खोज कर हत्यायें करवाई।

आतंकवादी भी दो प्रकार के होते हैं–1 संचालक 2 संचालित। आतंकवादी विचारधारा के संचालक हमेशा अप्रत्यक्ष होते है और उग्रवाद तक सीमित रहते है। आमतौर पर उस विचारधारा से संचालित कुछ लोग आतंकवादी हो जाते हैं जो प्रत्यक्ष दिखते हैं। नाथूराम गोडसे एक उग्रवादी विचारों से संचालित व्यक्ति था जिसका अपना कोई विचार नहीं था। संचालक अप्रत्यक्ष होता है और संचालित प्रत्यक्ष इसलिए नाथूराम गोडसे को फांसी पर चढना पडा।

यदि हम सिर्फ भारतीय आतंकवाद की समीक्षा करें तो भारत में शांति व्यवस्था को अपराधियों से उतना खतरा नहीं है जितना उग्रवाद प्रभावित आतंकवाद से। भारत दो प्रकार के आतंकवाद से जूझ रहा है–1 इस्लामिक आतंकवाद 2 नक्सलवादी आतंकवाद। दुनियां में साम्यवाद के पतन के बाद भारत में भी साम्यवाद की ताकत बहुत कम हो गई है। नरेन्द्र मोदी के बाद साम्यवादी विचारधारा भी सामाजिक वातावरण से अलग–थलग होती जा रही है। सरकार ने भी नक्सलवाद समाप्त करने का बीडा उठा लिया है और जल्दी ही इस आतंकवाद से पिण्ड छूट जायेगा किन्तु इस्लामिक आतंकवाद अभी नियंत्रित नहीं हो पा रहा है। इस्लामिक उग्रवाद को वामपंथी उग्रवाद का भी पूरा समर्थन मिल रहा है। पडोसी देश पाकिस्तान भी निरंतर इस प्रयत्न में लगा हुआ है कि भारत कश्मीर के नाम पर निरंतर अशांत बना रहे। कश्मीर प्रदेश तो पूरी तरह इस्लामिक आतंकवाद का गढ़ बना हुआ ही है किन्तु भारत का मुस्लिम बहुमत तथा वामपंथी विचारधारा के लोग भी येनकेन प्रकारेण इस्लामिक आतंकवाद की अप्रत्यक्ष ढाल बनकर खडे हो गये है। एक बार तो भारत का राजनैतिक विपक्ष ऐसी उम्मीद करने लगा था कि कश्मीर भारत से निकल सकता है किन्तु फिर से सरकार ने ऐसी संभावनाओं पर पानी फेर दिया है। एक बार फिर इस्लामिक आतंकवाद नियंत्रित होता दिख रहा है। कश्मीर में वातारण जिस तरह सरकार के पक्ष में बदल रहा है उसके परिणाम स्वरुप विपक्ष की राजनीति भी यह सोचने को मजबूर हो रही है कि सिर्फ मुस्लिम वोटो के सहारे अब भारत में राजनीति करना संभव नहीं है। भारत के मुसलमानों में से भी जो लोग मोदी के पूर्व इस्लामिक उग्रवाद के पक्षधर न होते हुए भी चुप थे वे भी अब मुखर होकर बाबरी मस्जिद राम जन्मभूमि जैसे प्रकरणों में सामने आने लगे है। मैं आश्वस्त हूँ कि जिस तरह शिया धर्मगुरु ने खुलकर अपना पक्ष रखा है, मोदी के पूर्व उनके ऐसे प्रयत्न आतंकवादियों के निशाने पर हो सकते थे। स्पष्ट है कि इस्लामिक उग्रवाद के विरोधियों की हिम्मत धीरे–धीरे बढ रही है।

जहॉ तक भारतीय संस्कृति का सवाल है तो अब हिन्दू आतंकवाद का खतरा पूरी तरह समाप्त हो गया है। एक बार ऐसा संदेह होने लगा था कि इस्लामिक आतंकवाद और साम्यवादी आतंकवाद की प्रतिस्पर्धा में हिन्दू आतंकवाद भी जन्म ले रहा है किन्तु जन्म के समय ही उसकी मृत्यु हो गई और वह फिर आगे नहीं बढ पाया। नरेन्द्र मोदी के आने के बाद अब ऐसा कोई तर्क भी नहीं दिखता जो हिन्दू आतंकवाद की आवश्यकता का समर्थन करें। अब तो आवश्यकता यह है कि पूरा भारत एकजुट होकर इस्लामिक आतंकवाद से मुक्त होने का प्रयास करे। साथ ही साथ भारत दुनियां के इस्लामिक आतंकवाद से मुक्ति में भी अपना अच्छी भूमिका अदा करे। इस भूमिका में

हिन्दू और मुसलमान अथवा राजनैतिक पक्ष–विपक्ष को पूरी तरह भूल जाने की आवश्यकता है क्योंकि आतंकवाद किसी के लिए भी हितकर नहीं है, उन उग्रवादियों के लिए भी नहीं जिनके समर्थन से आतंकवाद फलता फूलता है।

मैं इस संबंध में एक सलाह और देना चाहता हूँ कि संघ परिवार ने तीन वर्ष पूर्व तक उग्रवाद के विरुद्ध उसी की भाषा में उत्तर देने के लिए उग्रवाद के विस्तार का जो प्रयत्न किया उस प्रयत्न के लिए वह धन्यवाद का पात्र है किन्तु अब नरेन्द्र मोदी के बाद संघ परिवार को अपनी स्वतंत्र रणनीति बदल लेनी चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि आतंकवाद या उग्रवाद को अब भारत में राजनैतिक स्तर पर निपटा दिया जायेगा और अब संघ परिवार के प्रयत्न इस प्रकिया में बाधक ही बनेंगे, साधक नहीं। आवश्यकता इस बात की है कि आतंकवाद और उग्रवाद के साथ–साथ समाज में बढ रहा हिंसा के प्रति समर्थन भी नियंत्रित करने की आवश्यकता है। भारत सरकार गांधीवाद के न्यूनतम सरकारी हिंसा से उपर उठकर संतुलित हिंसा के मार्ग पर निरंतर बढ रही है। आवश्यकता इस बात की है कि हम समाज में अहिंसा के पक्ष में वातावरण बनाने का प्रयास करें। जो लोग हिंसा के समर्थक है वे अब तक तो इसलिए राडार पर नहीं थे क्योंकि राज्य स्वयं ही वातावरण नहीं बना पा रहा था जिससे आतंकवाद और उग्रवाद से सफलतापूर्वक निपटना संभव हो। अब राज्य इस दिशा में ठीक तरीके से आगे बढ रहा है। अब संघ परिवार को चाहिए कि वह अपने को जरुरत से ज्यादा चालाक समझने की भूल न करे और आंख मूंदकर नरेन्द्र मोदी का समर्थन करे। इस समय भारत में नरेन्द्र मोदी लाख मर्ज की एक दवा के रुप में स्थापित हो रहे है। उनके प्रयत्नों की समीक्षा नये चुनाव के बाद की जा सकती है, अभी नहीं। मुझे उम्मीद है कि संघ भी इस बात को समझने का प्रयास करेगा। ?

मंथन कमांक 60

कन्या भ्रूण हत्या कितनी समस्या और कितना समाधान

कुछ स्वयं सिद्ध सिद्धांत हैं–

(1) समस्याओं के तीन प्रकार के समाधान दिखते है–(1) प्राकृतिक (2) सामाजिक (3) संवैधानिक। अधिकांश समस्याओं के प्राकृतिक समाधान होते हैं। सामाजिक समाधान कुछ विकृति पैदा करते है तो कुछ समाधान करते है। संवैधानिक प्रयत्न सामाजिक विकृतियों का लाभ उठाते है।

(2) अधिकांश समस्याओं का प्राकृतिक समाधान मांग और पूर्ति पर निर्भर करता है। किसी वस्तु की मांग बढती है तो महत्व और मूल्य बढता है, महत्व और मूल्य बढता है तब मांग घटती है पूर्ति बढती है।

(3) व्यक्ति और समाज मूल इकाई होते है। परिवार से राष्ट्र तक व्यवस्था की ईकाइयां है। परिवार, गांव, जिला, प्रदेश, देश, व्यवस्था की आदर्श इकाईयां मानी जाती है। भारत में इस कम को बदल कर जाति, वर्ण, धर्म, राष्ट्र कर दिया गया।

(4) महिला या पुरुष या तो व्यक्ति होते है अथवा परिवार के सदस्य। इनका कभी महिला पुरुष के रुप में कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता।

(5) राज्य प्राकृतिक या सामाजिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करता है जो पूरी तरह गलत होता है।

(6) सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत परिवार में पुरुष प्रधान होता है क्योंकि आमतौर पर महिला पति परिवार में जाकर शामिल होती है। आमतौर पर पुरुष बाहर काम अधिक देखते है और महिलाये घर का। प्राकृतिक रुप से भी पति पत्नी के संबंधों में पति आक्रामक और पत्नी का आकर्षक होना आवश्यक है।

(7) राजनेता दुनियां का सबसे बडा असामाजिक व्यक्ति बन गया है। वह सेना, पुलिस, संविधान, कानून आदि के सहारे समाज को बांट कर उसे गुलाम बनाकर रखना चाहता है।

(8) भारतीय कानूनों ने परिवार व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने के उद्देश्य से दहेज व्यवस्था पर तो प्रतिबंध लगा दिया दूसरी ओर विवाह के बाद भी महिलाओं को पिता की सम्पत्ति में हिस्सेदार बना दिया।

एक शिक्षक, एक बालक को इस प्रकार चलने का अभ्यास करा रहे थे कि जब बालक का बाया पैर आगे बढे तो साथ में दाहिना हाथ आगे जाना चाहिए और दाहिने पैर के साथ बाया हाथ। महिनों प्रयास के बाद भी बालक सीख नहीं पा रहा था। एक सलाह के आधार पर जब बालक को स्वतंत्र रुप से चलने के लिए छूट दी गई तो बालक ठीक उसी प्रकार चलने लगा जैसा गुरु जी चाहते थे। इसका अर्थ हुआ कि प्राकृतिक और स्वाभाविक व्यवस्था में अनावश्यक छेडछाड और हस्तक्षेप करना लाभदायक नहीं होता। परिवार की आंतरिक व्यवस्था क्या हो, उसमें महिला सशक्त हो या पुरुष उसमें कौन बाहर का काम करे और कौन घर का, कौन कितने विवाह करें और कौन अविवाहित रह जाये यह अंतिम निर्णय परिवार का होना चाहिए। उसमें कभी भी समाज या सरकार को तब तक

हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक उनकी आपस में सहमति है। आश्चर्य है कि महिला सशक्तिकण का नारा लगाकर कानून द्वारा परिवार के आंतरिक मामलों में भी अनावश्यक हस्तक्षेप किया जाता है। दूसरी ओर यदि परिवार का सदस्य परिवार से अलग होना चाहे तो उसे भी अलग होने के पूर्व कानून से स्वीकृति लेनी पडती है। यह कैसा अंधा कानून है कि एक जीवित व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक परिवार से अलग भी नहीं हो सकता और जुड भी नहीं सकता। दुनियां जानती है कि यदि महिलाओं की कुल संख्या घटेगी तो उनका महत्व और सम्मान बढेगा, यदि उनकी संख्या बढेगी तो उनका महत्व और सम्मान घटेगा। प्राचीन समय में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की संख्या बहुत अधिक थी परिणामस्वरुप समाज में बहुविवाह, सतीप्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, दहेज जैसी प्रथायें प्रचलित हुई। प्राकृतिक व्यवस्था के अंतर्गत महिला और पुरुष का जन्म लगभग बराबर होता है। सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत महिलायें अधिक हो जाती है और पुरुष कम। जब महिलाओं का महत्व घटता है तब स्वाभाविक रुप से महिलाओं की संख्या घटती है और उनका अनुपात कम होने के बाद धीरे–धीरे उनका महत्व बढता है। कभी समाज में यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते का उद्घोष किया जाता है तो कभी ढोल गवार शूद्र पुशु नारी का । ये दोनों ही उद्घोष परिस्थिति जन्य होते है, सैद्धांतिक नहीं । क्योंकि इस संबंध में सिद्धांत उनकी संख्या के अनुपात पर निर्भर करता है।

वर्तमान समय में दो विपरीत बाते एक साथ समाज में कहीं जा रही हैं–

(1) महिलाओं को परिवार और समाज में सशक्त होना चाहिए, उन्हें स्वालम्बी होना चाहिए।

(2) महिलाओं की संख्या निरंतर बढाने का प्रयास होना चाहिए।

स्वाभाविक है कि दोनों उददेश्य एक साथ पूरे नहीं हो सकते क्योंकि यदि महिलाओं की संख्या बढेगी तो उनका महत्व नहीं बढेगा। चूंकि राजनेता कभी किसी समस्या का समाधान नहीं करना चाहते इसलिए वे दोनों बातों को एक साथ जोडकर प्रचारित करते है। स्पष्ट है कि उनका उददेश्य महिला सशक्तिकरण नहीं है बल्कि परिवार व्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने के लिए महिला और पुरुष के बीच टकराव पैदा करना है।

मैं आज तक नहीं समझ सका कि कानूनी आधार पर जन्म के बाद मनुष्य का अस्तित्व माना जाता है अथवा जन्म के पूर्व। मेरी जानकारी के अनुसार किसी भी जीवित व्यक्ति की किसी भी परिस्थिति में हत्या नहीं की जा सकती। यदि गर्भ से ही उसे जीवित मान लिया गया तब सिर्फ बालिका भ्रूण हत्या पर ही प्रतिबंध क्यों? बालक की भ्रूण हत्या पर क्यों नहीं? वैसे भी बालक की भ्रूण हत्या नगण्य ही होती होगी। तब भ्रूण हत्या को पूरी तरह प्रतिबंधित न करके कन्या शब्द जोडना क्यों आवश्यक है। मेरे विचार में कन्या शब्द जोडने का एकमात्र उददेश्य महिला और पुरुष के रुप में वर्ग निर्माण और वर्ग विद्वेश फैलाना मात्र है जिससे परिवार व्यवस्था पूरी तरह छिन्न–भिन्न हो जाये। इस शब्द से आभास होता है कि पुरुष हमेशा शोषक होता है और महिला शोषित। जबकि यह धारणा पूरी तरह असत्य है। यदि इसमें लेश मात्र भी सच्चाई होती तो महिलाये सब कुछ जानते हुये भी स्वेच्छा से पति के घर में नहीं जाती। अनेक तो अपने परिवार की इच्छा के विरुद्ध भी पति के साथ चली जाती है। स्पष्ट है कि जानबुझकर महिला और पुरुष के बीच संदेह की दीवार खडी की जाती है। जब सर्वविदित है कि महिला और पुरुष का एकसाथ रहना अनिवार्य है तब महिला सशक्तिकरण की अपेक्षा परिवार सशक्तिकरण का प्रयास क्यों नहीं होना चाहिए। जब प्राकृतिक रुप से पति को आक्रामक और पत्नी को आकर्षक होना चाहिए तब महिला सशक्तिकरण का अभियान क्यों चलाया जा रहा है? मेरे विचार में महिलाए भी कभी नहीं चाहती कि उनके पति कमजोर रहें क्योंकि ऐसा होना स्वाभाविक रुप से उचित नहीं है।

समस्याओं का समाधान खोजते समय उस समाधान से पैदा होने वाली समस्या पर भी ध्यान दिया जाता है। यदि महिलाओं की संख्या कम होगी तो महिला पुरुष के बीच में अंतर अपने आप घटेगा। दहेज करीब–करीब समाप्त हो गया है और कहीं–कहीं लडकियों को भी दहेज मिलने लगा है भले ही उसका नाम कुछ भी रखा जाये या अभी गुप्त हो। महिलाओं में शिक्षा का विस्तार भी तेज गति से हो रहा है और महिलाए परिवार में रहते हुए भी बाहर का काम करने लगी है। यह भी संभव है कि वर्तमान समय में महिलाए पति के घर में जाना मजबूरी समझती है। इस मजबूरी में भी बदलाव आ सकता है। अब महिलाये पति की सहायक न होकर एक दूसरे की पूरक बन गई है। इन सब परिवर्तनों का आधार है महिलाओं की घटती संख्या किन्तु राज्य इन सब बदलावों का श्रेय अपने कानूनों पर देता रहता है। इसके बाद भी मैं समझ नहीं पा रहा कि महिलाओं की संख्या वृद्धि के लिए इतने सरकारी प्रयत्नों की क्या आवश्यकता है। ज्यों ही महिलाओं का महत्व बढेगा, उनकी आबादी अपने आप बढने लग जायेगी। प्राकृतिक और मांग पूर्ति के सिद्धांत से अलग हटकर राजनैतिक समाधान का कोई लाभ संभव ही नहीं है,

तब यह प्रयत्न क्यों? वर्तमान में महिलाओं की जो संख्या है वह हो सकता है कि आधा प्रतिशत और भी घट जाये। यह असंभव है कि वह संख्या 55, 45 हो जाये। तो आधा प्रतिशत और घटने की संभावना से कोई आसमान नहीं टूट पडेगा।

मेरे विचार से महिला पुरुष संबंधों के किसी भी मामले से कानून और राज्य को पूरी तरह दूर हो जाना चाहिए। कानून को चाहिए कि वह या तो जन्म के बाद जीवन माने अथवा यदि भ्रूण से जीवन मानना है तो बालक–बालिका का फर्क समाप्त कर दे। कानून को यह भी चाहिए कि वह महिला पुरुष को अलग–अलग वर्ग के रुप में न मानकर उन्हें या तो व्यक्ति माने या परिवार का सदस्य। उनके संबंध में कभी कोई विभेदकारी कानून न बनावे। राज्य को यह भी चाहिए कि वह परिवार व्यवस्था को एक संवैधानिक इकाई माने और उसे संप्रभुता सम्पन्न इकाई का दर्जा दे, उसके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें। साथ ही राज्य का यह भी कर्तव्य है कि वह महिला पुरुष अनुपात को कम ज्यादा करने में अपना हस्तक्षेप कभी न करे जब तक कोई अपातकालिन स्थिति न आ जाये। प्राकृतिक व्यवस्था को प्राकृतिक या सामाजिक आधार पर चलने देना चाहिए। अंत में मेरा यह मत है कि कन्या भ्रूण हत्या न कोई सामाजिक समस्या है, न कोई समाधान। इस समस्या को राज्य ने जानबूझकर उलझाया है और राज्य के अलग होते ही यह समस्या अपने आप समाप्त हो जायेगी।
मंथन का अगला विषय'' नई अर्थ नीति '' होगा।

ताजमहल मंदिर है या नहीं

आजकल ताजमहल हिन्दू मंदिर था यह दावा जोर शोर से हो रहा है। दावा सच है या गलत यह बात अनिश्चित है। जिस तरह आजकल मुस्लिम विरोध की बाढ आई हुई है उससे तो यही आभाष होता है कि मंदिर का दावा गलत होगा किन्तु जिस तरह मुसलमानों का दूसरो के साथ पुराने समय में व्यवहार रहा तथा आज भी है उससे इस दावे की सच्चाई को जाने बिना ही समर्थन बढता जा रहा है। किसी बदनाम व्यक्ति पर यदि झूठा आरोप भी लगे तो आरोप सच सरीखा बन जाता है।

ऐसी परिस्थिति में भारत के मुसलमानों को विशेष सतर्कता बरतनी चाहिये। उन्हें ताजमहल की चिन्ता छोड देनी चाहिए भले ही गलत ही क्यों न हो क्योंकि भारत के मुसलमान अब साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के हथियार का प्रयोग करके नुकसान में रहेंगे। पूरी दुनियां से भी उन्हें समर्थन नहीं मिलेगा। भारत में तो मिलना ही नहीं है। अभी तो सिर्फ ताजमहल पर दावा है कुछ वर्ष बाद यह भी संभव है कि आपको ही किसी हिन्दू की संतान प्रमाणित कर दिया जाये और आप कुछ न कर सकें। न आपको लोकतंत्र बचा सकेगा न ही संविधान और न ही न्यायपालिका। बचने के लिए तो आपको स्वयं ही अपने व्यक्तिगत व्यवहार में सुधार करना होगा। इसलिए आपके लिये सबसे अच्छा मार्ग यही है कि आप अपनी साम्प्रदायिक सोच को बदलिये। किसी प्रकार का फतवा पूरी तरह बंद कर दीजिये। मानवीय व्यवहार को ज्यादा महत्व दीजिये। धर्म की जगह समाज को उपर मानिये। यदि आपने थोडा भी व्यवहार ठीक किया तो शीघ्र ही हिन्दुओं का संघ के प्रति मोह भंग हो जायेगा। आपका ताजमहल भी बच सकता है और आप भी न्याय पा सकते है अन्यथा कहीं प्याज और झापड दोनों खाने की कहावत न चरितार्थ हो जावे।

1. मोहम्मद शफी आजाद बाराबंकी उ0प्र0

प्रश्नः–आप द्वारा प्रेषित ज्ञानतत्व अंक 357 प्राप्त हुआ। मंथन कमांक–42 में वर्णित आपके विचारों से सहमत हूॅ जो दिनोदिन बलात्कार जैसी घटनाओं को रोकने की एक पहल सिद्ध हो सकती है, जो धर्म और समाज में प्रचलित मान्यताओं से कतई संभव नहीं। इसी अंक में श्री शिवदत्त बाघा बांदा ने अपने विचार व्यक्त किये है कि अगर आज की दुनियां को हम इंसानों की दुनियां में बदलने में कामयाब हो सके तो सारे रगड़े–झगड़े, खून–खराबा समाप्त। बंटा हुआ आदमी ही विवाद की जड़ है। मैं शिवदत्त जी के कथन से पूर्ण रुप से सहमत हूॅ परन्तु फिलहाल यह सम्भव नहीं दिखता। आपने यह तो कहा कि आप साम्प्रदायिकता से कभी सहभागिता नहीं करेगे किन्तु साथ में आपका यह भी कथन कि वर्तमान समय में आप साम्प्रदायिक मुसलमानों की तुलना में साम्प्रदायिक हिन्दुओं को अधिक समर्थन की नीति पर चल रहे है, साम्प्रदायिक होने से अलग होना नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि सम्प्रदाय जरुरी है हम चाहे हिन्दू बनकर रहे या मुस्लिम, सिख बने या ईसाई परन्तु किसी का सम्प्रदाय से अलग होकर रहना किसी को गवारा नहीं। यदि हम मानते है कि मनुष्य का सम्प्रदाय में बंटकर रहना उचित नहीं तो कम से कम हम सम्प्रदाय से अलग हटकर सिर्फ एक मानव की भांति जीने का प्रयास करें और घोषणा करें कि हम प्रत्येक सम्प्रदाय

से अलग है, परन्तु यह भी इतना आसान नहीं है। आज इक्कीसवीं सदी में जब मनुष्य प्रकृति के तमाम अनसुलझे रहस्यों की परतें उधेडने को प्रयासरत है किन्तु वह सच्चाई को स्वीकार करने का साहस नहीं कर पा रहा है। समाज को ढोंगी पाखण्डी स्वीकार हैं, संत रामपाल, आशाराम, बापू, रामरहीम, जैसे साधु स्वीकार है, आजम खां, असद्दीन, अबैसी, विनय कटियार, प्रवीण तोगडिया जैसे समाज में नफरत का जहर घोलने वाले नेता स्वीकार हैं। मौलाना अंसार रजा और संवित पात्रा जैसे प्रवक्ता डिवेट पर दर्शकों को स्वीकार है परन्तु आचार्य रजनीश जैसा विचारक स्वीकार नहीं, कबीर जैसा तत्व ज्ञानी स्वीकार नहीं है। शिवदत्त बाघा जी का सही आंकलन है कि संसार में मनुष्य के बीमार होने की सूचना है। आज बिल्कूल स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि मुल्क की अमन शांति व आपसी भाई चारा स्थापित करने के लिए हिन्दू मुस्लिम धर्म गुरुओं के सारे प्रयोग विफल हो रहे है, बल्कि दुष्परिणाम चिंताजनक है। फिर भी अपनी मान्यताओं पर कोई भी पुनर्विचार को तैयार नहीं। यह कितना अजीब है कि वर्तमान में राम रहीम जैसा ढोंगी आम चर्चा में टाप कर है, क्या यह मनुष्य के बीमार होने के लक्षण नहीं। आज मानव समाज में कबीर पर चर्चा होने की जरुरत है। यदि मंदिर/मस्जिद में कबीर पर चर्चा स्वीकार न हो तो भी आम जन में चर्चा की जरुरत है। यदि हमें अपने स्वयं से या मानव जाति से प्रेम है तो किसी दूसरे के सहारे न बैठ कर अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरुक होना होगा। यदि आपको उचित प्रतीत हो तो इस विषय को भी अपनी चर्चा विचार मंथन कार्यक्रम में सम्मिलित करने का कष्ट करें।

उत्तरः—मैंने साम्प्रदायिकता को नजदीक से देखा है। साम्प्रदायिक व्यक्ति हमेशा चाहते है कि शांतिप्रिय धर्म निरपेक्ष प्रवृत्ति के हिन्दू मुसलमान कभी एकजूट न हो बल्कि हिन्दू मुसलमान के नाम पर आपस में बटे रहे। साम्प्रदायिक तत्व शांतिप्रिय लोगों को लडाने भिडाने में अधिक विश्वास करते है। ऐसी परिस्थिति में हमारे समझ दो मार्ग बचते है कि हम शांतिप्रिय हिन्दू मुसलमान आपस में मिलकर रहें। साथ ही हम इस बात का भी प्रयास करें कि साम्प्रदायिक तत्व दो गुटों में बटकर यदि आपस में लड़ते मरते है तो हम उनसे दूर रहें। यदि भारत में संघ और इस्लामिक गुटों के बीच टकराव होता है तो हमें अधिक चिंता की कोई बात नहीं। फिर भी एक बात अवश्य है कि दोनों में से यदि किसी एक की मदद करनी हो तब ऐसे की मदद करनी चाहिए जो कमजोर हो और साथ ही शरीफ भी हो। मेरा अपना अनुभव है कि हिन्दू आमतौर पर अधिक शरीफ और अहिंसक होता है जब तक वह संघ परिवार से न जुड़ जाता हो। दूसरी ओर मुसलमान आमतौर पर हिन्दू की तुलना में अधिक संगठित होता है क्योंकि इस्लाम संगठन पर विश्वास करता है और हिन्दुत्व व्यक्तिगत धर्म पर। मुसलमान को अहिंसक और धर्म निरपेक्ष रहने के लिए संगठन से दूरी बनानी पड़ती है। इसका अर्थ हुआ कि मुसलमान को धर्म निरपेक्ष रहने के लिए अलग से प्रयत्न करने पडते है तो हिन्दू को साम्प्रदायिक बनने के लिए अलग से प्रयत्न करने पड़ते है। मैं यह समझता हूँ कि भारत में मुसलमानों ने अपनी वोट बैंक की ताकत पर पूरी राजनीति को अपने नियंत्रण में रखा जबकि हिन्दू बहुमत में होने के बाद भी विभिन्न गुटों में बंटा रहा और कभी वोट बैंक की ताकत नहीं बना सका। इसलिए मैं व्यक्तिगत रुप से मुस्लिम और हिन्दू संगठनों के विवाद में हिन्दू संगठनों की ओर या तो तटस्थ रहता है या झुक जाता हूँ। मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि यदि साम्प्रदायिक हिन्दूओं की ताकत भारत में एक सीमा से अधिक बढ़ी तब मैं अपने विचारों में परिवर्तन भी कर सकता हूँ। मुझे निकट भविष्य में ऐसी संभावना नहीं दिखती क्योंकि संगठित मुसलमान भारत ही नहीं पूरी दुनियां के लिए समस्या के रुप में सिद्ध हो रहे है और दुनियां में एक भी ऐसा देश नहीं है जो इस्लाम की शक्ति के प्रति सतर्क न हो।

आपने लिखा है कि आज का मनुष्य सच्चाई को स्वीकार नहीं कर रहा है। आपको मेरे विषय में इसलिए भ्रम नहीं होना चाहिए कि मैंने सच्चाई को कभी छिपाया नहीं है। मेरे लिए यह सच्चाई है कि मैं या तो साम्प्रदायों से दूर हूँ या यदि आवश्यकता हुई तो मुस्लिम साम्प्रदाय की तुलना में हिन्दू सम्प्रदाय की ओर आंशिक झुक जाता हूँ।

आपने रामपाल, आशाराम, रामरहीम, आजम खान, ओबैसी अन्सार रजा, संबित पात्रा को एक पलडे पर रखा और दूसरे पलडे पर रजनीश कबीर को रखा। सफी भाई रजनीश कबीर गांधी अब जीवित नहीं हैं । आप वर्तमान समय में मौजूद हिन्दू मुस्लिम अनुकरणीय पात्रों का नाम लिखते तो अधिक अच्छा होता। वर्तमान समय में ऐसे कौन लोग है जो रजनीश कबीर के समान समाज का मार्ग दर्शन कर रहे है। इसलिए मृत महापुरुषों के विचारों का अनुकरण किये बिना जो महापुरुष जीवित है उनके विचारों का अनुकरण किया जा सकता हैं। मैं देख रहा हूँ कि कबीर की भी समाज में चर्चा हो रही है तो औरंगजेब की भी चर्चा हो रही है। अपने—अपने तरीके से लोग अपने पक्ष

मजबूत कर रहे है। जाकी रही भावना जैसी के अनुसार सब लोग चर्चा में व्यस्त है। इसी चर्चा में से हम आप भी कुछ चर्चा करके किसी निष्कर्ष पर पहुॅचने का प्रयास कर रहे है।

2. एम एस सिंघला, अजमेर, राजस्थान

प्रश्नः—यह देखकर विस्मित प्रसन्नता हुई कि एक निजी पत्र को प्रकाशन में स्थान दे दिया गया। क्या वस्तुतः वह इस स्तर का या इस योग्य था। आपको मेरी कृति 'ऊर्मिया' मिल चुकी होगी। उससे मेरे बारे में और जानकारी हो गई होगी। यह तथ्य मेरे लिए कम महत्व रखता है कि जातीयता को लेकर आपका जीवन और परिवेश कैसा रहा। आप अपने आपको अग्रवाल लिखते हैं, मेरे लिए यही पर्याप्त है। आगे कुछ आवश्यकता होती तो वैसा कदम उठाया जाता। जातीयता को उसी प्रकार प्राथमिकता दी गई जिस प्रकार पहले परिवार में परिजनों को दी जाती है। यह बात अलग है कि अब समय बहुत बदल गया है। जब परिजन ही परवाह नहीं करते तब सामाजिक संगठन मात्र छलावा बनकर ही रह गया है। मैंने व्यवस्था में जान फूंकने का प्रयास किया किन्तु.....?! जैसा आप कभी लिख चुके हैं, देश का शासन तंत्र इसके लिए उत्तरदायी है। आज का शासन, शासन करने की अपेक्षा सामाजिक नियंत्रण में लगा है और उसमें भी वह असफल है क्योंकि समाज कानून से नहीं चलता। मेरे पिता जी अंग्रेजी, फारसी पढे थे। इसके बावजूद उन्होंने गीता और महाभारत भी पढी। उन्होंने मुझे उक्त दोनों भाषायें पढाई और अंग्रेजी पर विशेष बल दिया। इस प्रकार बचपन में मैं अंग्रेजी से अधिक प्रभावित रहा। उसी झोंक में मेरे मन में धर्म परिवर्तन का भाव भी आ गया था और अपना नाम तक मैक डॉनल्ड मैनर पसन्द कर लिया था। जीवन में कैसे—कैसे उतार चढाव आते है यह कमो बेश सबके साथ होता है। अपने देश के अतीत और उसके गौरवशाली इतिहास का बोध होने पर मैंने स्वयं को इस दृष्टि से उपहास का पात्र पाया। अस्तु। आपकी परिस्थितयों ने आपको ब्राम्हणत्व प्रदान किया तब वैसे ही विचार सृजित होते क्या नहीं दिखाई पड रहे! यह अपना—अपना ऑकलन हो सकता है। शिक्षा, ज्ञान, जाति, संगठन जैसी संज्ञाओं के मर्म तक पहुॅचना ब्राम्हणत्व वाले गुण ही हो सकते हैं। वस्तुतः मनु महाराज ने जो वर्ण व्यवस्था की थी उसका उद्देश्य समाज को सुचारु रुप से चलाना था और वह सदियों तक चला। गीता में भगवान कृष्ण ने भी कहा है कि कर्म कोई छोटा बडा नहीं होता। अपने वर्ण और कर्म में निरत रहना ही श्रेष्ठ होता है। ऐसा कौन सा तत्व है जो पैदा होकर क्षीण, हीन और मृत या मृतप्राय नहीं होता। तब भी, उस आदर्श सामाजिक व्यवस्था की भी, काल के अनुसार यह दशा हुई तो कोई आश्चर्य नहीं। आज उसमें परिवर्तन करके किसी जाति संगठन या राजनीतिक दल ने क्या सफलता पा ली है। आज समाज छिन्न—भिन्न करके रख दिया गया है। एक का काम दूसरे को देकर अयोग्यता का अम्बार लगा दिया गया है। इस दुरवस्था को एक शायर ने ये शब्द दिये हैं—

तहजीब का परचम लहराया, हर शहर—ओ—चमन बीरान हुआ
तमीर का है सामां जो यही, तख्मीर का सामां क्या होगा!

आज भी कुछ संगठनों में काम कर रहा हूॅ परन्तु नेतृत्व को प्रभावित कर पाने की स्थिति नहीं बनती न कभी बनी। आपका यह ऑकलन सही है कि हृदय और मस्तिष्क इन दो पैरों पर जीवन यात्रा होती है और इनमें किसी एक की अति हो जाने पर चाल बिगड़ जाती है। हृदय की अति का पक्ष पशुता है और मस्तिष्क की अति का पक्ष राक्षसीवृत्ति बनती है। आज ज्ञान की अपेक्षा शिक्षा का वर्चस्व और मस्तिष्क पक्ष की अति मानवता को पतन की ओर ले जा रही है। आपने आर्यो के चार वर्णो में ब्राम्हण, कौन यह छोड दिया है। क्षत्रियों को इस्लाम में शामिल करना उनके साथ न्याय नहीं है। इस्लाम में शाहजहां के साथ क्या हुआ, आई एस में आज क्या हो रहा है, ऐसे उदाहरण हैं जो क्षत्रिय को इस्लाम के समकक्ष ठहराने में असंगत ठहरते है। आपकी ही लेखनी से अन्यत्र इस्लाम की ज्यादतियों का विवरण दिया गया है। अतः स्वयं आपके लिए यह सोच पुनर्विचार मांगती है। भाव या विचार बहुत हैं किन्तु जब तक व्यवहार में न हो, उनका कोई मूल्य नहीं।

रहीम का दोहा है— रहिमन यों सुख होत है बढत देख निज गोत।
ज्यों बडरी अंखियां निरखि अंखियन को सुख होत।।

गीता के संदर्भ में एक प्रश्न का उत्तर खोज रहा हूॅ। गीता के पहले अध्याय के अंतिम श्लोकों में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा है—

सभी पुरातन कुल धर्मो का कुल विनाश से होता अन्त
आ जाने पर धर्महीनता कुल में होते पाप अनन्त।।

धर्महीनता आजाने पर तो हो जाती कलुषित नारी। वार्षणेय! दुष्टा नारी से संकर होती सन्तति सारी।। कुल को कुल घातक को संकर ले जाता है नरक जहॉ। पिंडोदक से वंचित होकर गिरजाते हैं पितर वहॉ संकर वर्ण बनाने वाले इन दोषों में जो रहते। उनके कुल के धर्म सनातन शीघ्र नाश को हैं लहते।।
भगवान कृष्ण ने क्या इसका उत्तर दिया हैं?
दस बारह अपने निबंधों की पुस्तक प्रकाशित करने की आकांक्षा है किन्तु तन न साथ देने से इंकार करते है।
उत्तरः—मैंने ब्राम्हण की विस्तृत व्याख्या नहीं की। ब्राम्हण विचारक, चिंतक तथा मार्ग दर्शक होता है। ब्राम्हण शेष तीन वर्ण के लोगों के लिए मार्ग दर्शन करता है। आवश्यक नहीं कि वह बने बनाये मार्ग पर ही चले। देश काल परिस्थिति अनुसार समस्याओं के समाधान खोजना और समाज को प्रेरित करना उसका मुख्य कार्य है। ब्राम्हण धर्म ग्रंथो का रचना कार होता है, मात्र पाठक नहीं।

मैंने क्षत्रिय को इस्लाम में शामिल नहीं किया है बल्कि इस्लाम को क्षत्रिय में शामिल किया है। इस्लाम में जिस तरह शाहजहॉ के साथ हुआ वैसा ही तो कंस ने भी वसुदेव के साथ किया। दुष्ट प्रवृत्ति का होना मानव स्वभाव है यह अलग बात है कि यह मुसलमानों में ज्यादा है। हिन्दू राजाओं के आपसी टकराव भारत की गुलामी में बहुत सहायक रहे हैं। इसलिये उस कालखंड की गलतियों से सबक लेना आवश्यक है। हमें हिन्दू मुसलमान से भी थोडा उपर उठकर सोचना चाहिये। हम आप अब चौथे पन की ओर हैं। अब वस्तुतः संन्यास का समय है। संन्यासी चोटी जनेउ मुक्त होता है। इसका अर्थ हुआ कि संन्यासी ट्रस्टी ऑफ ट्रुथ सत्+न्यासी होता है। अब सम्पूर्ण मानव समाज को परिवार मानकर चलना उचित है। मैं इस्लाम की कटु आलोचना करता हूॅ किन्तु मेरे मुसलमान साथी कभी बुरा नहीं मानते क्योंकि वे मानते है कि मेरा स्वभाव कभी पक्षपात का नहीं रहा। मैं यह चाहता हूॅ कि अब हम आप संगठनों से उपर उठकर सम्पूर्ण मानव समाज को अपना परिवार मानने की पहल करें।

कल्पेश याग्निक, दैनिक भास्कर छ0ग0 से
विचारः—गलियारों में वकीलों की फुसफुसाहट से कोर्ट को कोई मतलब नहीं है। न ही इस बात से, कि कौन किसे बेच रहा है। कडी चेतावनी के साथ अंतिम फैसले में सुप्रीम कोर्ट।
कोर्ट अंतिम सत्य है। किन्तु अंतिम सत्य पर यदि अविश्वास संदेह और झूठ का वातावरण बनने लगे तो क्या होगा? ऐसा ही हो रहा है।
स्वयं सुप्रीम कोर्ट ने अपने न्यायिक आदेश में ऐसा कहा है। और स्पष्ट किया है कि मेजेस्टी ऑफ लॉ प्रसाद इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइन्सेज पर लगी रोक के बाद घटे नाटकीय और रहस्यमय घटनाक्रम में न जाने क्या क्या कहा गया, क्या क्या नहीं हुआ। अंततः उस मेडिकल कॉलेज की सुनवाई कर रहे सुप्रीम कोर्ट जजों पर आरोप लगा दिए गए जिनमें चीफ जस्टिस ऑफ इंडिया दीपक मिश्रा का नाम भी लिया गया।
ऐसा भारतीय इतिहास में पहली बार हुआ।
चीफ जस्टिस पर आरोप पहली बार नहीं लगे हैं। किन्तु ऐसा पहली बार हुआ कि चीफ जस्टिस के बाद वष्ठिता में दूसरे कम के जज ने इन आरोपों को अत्यंत गंभीर करार देते हुए, स्वयं एक 5 जजों की संविधान पीठ बनाने का न्यायिक आदेश जारी कर दिया और कहा कि याचिका में चीफ जस्टिस को इस केस से दूर रखने की बात की गई है।
फिर छिडा सर्वोच्च स्तर पर संघर्ष।
हम सभी जानते है कि फिर चीफ जस्टिस ने नई संविधान पीठ बना दी। दूसरे कम के वरिष्ठ जज जस्टिस जस्ती चेलमेश्वर का न्यायिक आदेश असंवैधानिक घोषित कर दिया। और तय हो गया कि चीफ जस्टिस ही सर्वोच्च है। उन पर आरोप लगने से कुछ नहीं होगा।
केस खत्म। राष्ट्रव्यापी संदेह शुरु।
इसलिए हम साधारण भारतीय नागरिकों को इसे जानने व समझने का प्रयास करना आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य है। निम्न प्रश्नों के माध्यम से कुछ तो समझ में आ ही सकता हैः—

प्रश्नः— क्या आरोप लगने के बाद भी चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा स्वयं केस सुन सकते हैं?
उत्तरः—चूंकि कोर्ट की बात हो रही है— तो कानून के आधार पर ही उत्तर आएगा, भले कानून अंधा हो। चीफ जस्टिस पर चाहे जो आरोप हों, वे स्वयं उस केस को सुनने में सक्षम और स्वतंत्र है, क्यों? क्योंकि पहले से मौजूद

सुप्रीम कोर्ट के कुछ फैसले चीफ जस्टिस को पूरा अधिकार देते हैं। चीफ जस्टिस ए एम अहमदी पर गंभीर आरोप व अकल्पनीय शब्दों का प्रयोग करने वाली याचिका लगी थी। चीफ जस्टिस वाय वी चन्द्रचूड पर भी आरोप थे। 1991 में वीरास्वामी विरुद्ध यूनियन ऑफ इंडिया केस में 5 जजों की संविधान पीठ ने चीफ जस्टिस को असीम अधिकार दिये थे। किन्तु कानूनी बातों से आगे है व्यावहारिक बिन्दू।

सारी याचिकाओं को खारिज कर, इस विवाद को खत्म करते हुए इस केस में अंतिम सुनवाई कर रही 3 जजों की बेंच ने अच्छा बिन्दु उठाया है कि कोई भी जज, खुद का जज नहीं हो सकता। यही प्रचलित है और सही भी है । किन्तु ये ऐसे ही लागू नहीं किया जा सकता।

यानी कोई जज किसी केस की सुनवाई कर रहा हो/ चुका हो– इसलिए वो पार्टी बन गया। इसलिए वो नहीं सुनना चाहिए। बल्कि यदि जज की रुचि हो या रुझान हो तो वह केस नहीं सुनना चाहिए।

चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा कानूनी लडाई में याचिका लगाने वालो के वकील प्रशांत भूषण को हरा चुके है। क्योंकि भूषण ने कहा था उनका नाम सीबीआई की एफआईआर में है। जब उद्वेलित नाराज चीफ जस्टिस ने एफ आई आर पढकर सुनाने को कहा– तो भूषण नहीं बता पाए कि नाम कहां है? बस!

जब कोई दलाल कह दे कि उसने किसी को ढूंढा है जो उसके पक्ष में फैसला करवा देगा– इससे वे सारे जज तो आरोपी नहीं बन सकते। किन्तु एक व्यावहारिक पहल और है। कुछ कडवा है। प्रसाद मेडिकल कॉलेज के बीपी यादव, पलाश यादव ओडिशा हाईकोर्ट के रिटायर्ड चीफ जस्टिसमुटटुसी से आश्वासन लाए थे। उसमें भारी भ्रष्टाचार ,घूस, लेन–देन हुआ ही होगा। इसका प्रमाण यह है कि जब केंद्र सरकार ने इस कॉलेज को मंजूरी नहीं दी तो सुप्रीम कोर्ट गए। जहॉ उस वर्ष 2017–18 की मंजूरी चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा की बेंच ने भी नहीं दी। किन्तु अगले वर्ष 18–19 के लिए मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया कॉलेज इंस्पेक्शन करे यह कहा। जब कॉलेज को सुनने के बाद कांउसिल ने फिर मंजूरी नहीं दी तो प्रसाद वाले अपील में सुप्रीम कोर्ट गए। किन्तु रिटायर्ड जस्टिस कुटटुसी के कहने पर अपील वापस ले ली और इलाहाबाद हाई कोर्ट गए। वहॉ स्टे पाने में सफल हो गए। और जिस 2 करोड की बैंक गारंटी की जब्ती कर एनकैशमेंट का सरकारी आदेश था, उसे भी रुकवा लिया। फिर काउंसिल नहीं माना।

18 सितंबर 2017 को जस्टिस मिश्रा की बेंच ने केस खारिज कर दिया था। किन्तु बैंक गारंटी एनकेश करने पर रोक हटा दी थी। यहॉ कडवी बात यही है कि अचानक इलाहाबाद हाईकोर्ट जाकर राहत पा लेने का अर्थ, अनर्थ है किन्तु एफआईआर में किसी मौजूदा जज का नाम न आना इसलिए आश्चर्यजनक नहीं हैं, चूँकि संवैधानिक रुप से मना है। 1991 में 5 जजों की संविधान पीठ ने तय किया था कि हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस और जज तथा सुप्रीम कोर्ट जज पर एफआईआर बिना चीफ जस्टिस ऑफ इंडिया की सहमति व मंजूरी के नहीं हो सकती। चीफ जस्टिस पर एफआईआर बिना राष्ट्रपति की सहमति व मंजूरी के नहीं हो सकती।

प्रश्नः– रेक्यूज क्या हैं?

उत्तरः–रेक्यूज कानूनी भाषा में बहुत ही प्रचलित है। केस से अलग हटने को रेक्यूज करना कहते है। चीफ जस्टिस को इस मेडिकल कॉलेज केस से रेक्यूज करने और सुप्रीम कोर्ट के रिटायर्ड चीफ जस्टिस की अध्यक्षता में स्पेशल जांच टीम बनाने की मांग से ही इतना बडा विवाद खडा हुआ।

यही नहीं जिस 2 जजों की बेंच ने अंतिम निर्णायक आदेश सुनाया उसे सुनाने वालों में एक जस्टिस एएम खनविलकर भी थे। उन्हें भी याचिका लगाने वालों में रेक्यूज करने की मांग रखी। क्योंकि वे भी प्रसाद कॉलेज का मामला सुनाने वाली बेंच में रहे थे।

रोचक यह भी है–या पता नहीं, दर्दनाक यह भी है कहें कि याचिका वालों के इन्हीं वकील ने जोडा हॉलाकि जस्टिस खनविलकर पर कोई आरोप नहीं है। व्यावहारिक प्रश्न यह है कि जब एफआइआर में किसी जज का नाम नहीं है। ऐसे में चीफ जस्टिस दीपक मिश्रा का नाम तो आरोपी के रुप में लिया गया। जबकि जस्टिस खानविलकर को आरोपी नहीं कहा गया? भूषण यहॉ जज कैसे बन गए? कि खानविलकर आरोपी नहीं हैं? और यदि आरोपी हैं ही नहीं, तो रेक्युजल क्यों मांगा?

प्रश्नः– क्या जस्टिस चेलमेश्वर ने 5 जजों की बेंच बनाकर सही किया?

उत्तरः—जस्टिस चेलमेश्वर ने ओडिशा के रिटायर्ड जस्टिस कुटटुसी और ओडिशा के दलाल विश्वनाथ अग्रवाल के प्रभाव और घूस के सीबीआई के सुबूतों को गंभीर माना। जो बहुत अच्छा और न्यायपूर्ण कदम था किन्तु वे इतने अनुभवी और वरिष्ठ होने के बावजूद स्वयं 5 जजों की संविधान पीठ गठन करने का आदेश क्यों दे गए? जो उनका कानूनी या न्यायिक अधिकार ही नहीं है। फिर व्यावहारिक रुप से भी, यदि सारे जज, गंभीर कहकर बेंच का गठन करने लगे। तो अराजकता फैल जायेगी।

उधर याचिका लगाने वाली संस्था ने हूबहू शब्दावली वाली, हूबहू मांग वही? कारवाई का अनुरोध करने वाली याचिका जस्टिस चेलमेश्वर के समक्ष जानबूझकर लगा दी। जो कि अन्य कोर्ट में जस्टिस एके सीकरी के समक्ष पेंडिग थी या तो वकील ने छुपाया या जज ने अनदेखा किया। किन्तु न्याय की अवमानना निश्चित हुई। इसे सुप्रीम कोर्ट ने फोरम शापिंग का निश्चित केश माना। प्रकिया का पालन करते हुए यदि जस्टिस चेलमेश्वर इसे गंभीर बताते हुए याचिका वालों को कहते कि वे चीफ जस्टिस से नई बेंच का अनुरोध करें तो फौरन वकील, जस्टिस सीकरी की कोर्ट मे पहले से है यह कहते या कौन जाने नहीं भी कहते। चुकिं उन्हें तो जस्टिस चेलमेश्वर ही चाहिये थे। चूंकि वे ही ऐसे जज थे जो इस घोटाले में न्यायमूर्तियों की भूमिका आने से आहत/सतर्क थे।

प्रश्न—4 फोरम शांपिग क्या है?

उत्तर— यह कानून मे बहुत डरावना शब्द है। इसका अर्थ है कि वकील या मुवक्किल, अपने पक्ष मे फैसला मिल सके ऐसे किसी तयशुदा जज या कोर्ट रूम /बेंच के सामने केस लिस्टकरवाने की कोशिश करें। व्यावहारिक रूप से यह और भी वीभत्स है। चूंकि इसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि जिस जज ने वैसा केस सुना वह उपलब्ध है। इस केश मे, अंतिम रूप से इसे फोरम शांपिग (जिसे बेंच या ज्यूरिस्डिक्शनल शांपिग या फोरम हंटिग भी कहते है) माना गया। निश्चित ही यह दुर्भाग्यपूर्ण रूप से जस्टिस चेलमेश्वर के लिये अधिक दुःखदायी और गलत है। क्योंकि वकीलों का तो काम ही केश लड़ना है। यहां लड़े या वहां लडें। वही कारण है कि चीफ जस्टिस ने जब कहा कि इतने मनगढंत और आपत्तिजनक आरोप पर कन्टेम्प्ट लगा देंगे। तो भूषण ने आराम से कहा लगा दीजिये । वो तो चीफ जस्टिस ताड़ गये। इसलिये बोले आप इसके योग्य नही।

प्रश्न—5 हमारे लिये इस पूरे घटनाक्रम मे सीखने के लिये क्या है?

उत्तर— बहुत सारी सीख है।

जज भी अंततः मनुष्य है। जबकि उन्हे जज ही रहना चाहिये। विवशता है। नाम ही जिनका जस्टिस हो। जिन्हें न्यायमूर्ति कहते हो वे साधारण मनुष्यों की तरह यदि प्रतिष्ठा अहम अहंकार या अधिकार की लडाइयां लडने लगेंगे तो हम साधारण मनुष्यों को न्याय कैसे देंगे?

सबसे बड़ी सीख है हमे कोई न कोई देख रहा है। वकील मुवक्किल जज कोई हो। मकतूल, क्रातिल कोई हो। कोई न कोई आख हम पर है ही। किन्तु न्याय अंतिम सत्य है। चूंकि हम अपना दुखड़ा अंतिम रूप से न्यायालय लेकर ही जाते है न्याय, अंतिम सत्य बना रहे, असंभव है। किन्तु बनाना ही होगा। सत्यमेव जयते केवल न्यायालयों की दीवारों पर लिखा वाक्य बनकर न रह जाये हमसे कही अधिक यह जिम्मेदारी न्यायमूर्तियों की है।

समीक्षाः—आजकल न्यायपालिका की बहुत चर्चा हो रही है। आज तक दुनियां में ऐसी कोई तकनीक विकसित नहीं हो पायी है जो पूर्व में ही यह बता सके कि किसी व्यक्ति की नीयत अच्छी है या बुरी। धीरे—धीरे उसके कार्यो से कुछ लोगों को उसकी बुरी नीयत का आभाष होने लगता है, जो कभी सच निकलता है तो कभी झूठ। एक निष्कर्ष की हमेशा अन्देखी होती है कि यदि समाज में किसी गलत करने वालों का प्रतिशत एक से अधिक हो जाये तो उसे विशेष परिस्थिति मान लेना चाहिए और यदि यह प्रतिशत दो से अधिक हो जाये जो यह मान लेना चाहिए कि दोष व्यक्ति में न होकर व्यवस्था में है। वर्तमान समय में भ्रष्टाचार 90 से लेकर 99 प्रतिशत तक हो गया है। इसका मतलब है कि दोष व्यवस्था में है और समाधान व्यक्ति में खोजा जा रहा है। यह गलती करने का एक विशेष कारण है कि समाधान खोजने वाले भी भ्रष्ट हैं और वे समाधान खोजने की अपेक्षा स्वयं को पाक साफ दिखाने का अधिक प्रयत्न करते हैं। मेरा कहने का आशय यह है कि न्यायपालिका में भी भ्रष्टाचार अन्य इकाईयों की तुलना में कुछ ही कम होगा, यह अलग बात है कि न्यायपालिका की तानाशाही शक्तियों के कारण उनका भ्रष्टाचार चर्चा में नहीं आता।

मैं प्रशांत भूषण को अच्छी तरह जानता हूॅ वे बहुत हिम्मत वाले और स्पष्टवादी हैं। कभी जानबूझकर किसी के विरुद्ध षडयंत्र नहीं करते । मैं उनकी कश्मीर संबंधी अथवा वामपंथी झुकाव से पूरी तरह विरुद्ध रहा हूॅ किन्तु व्यक्तिगत रुप से मैं उनका बहुत सम्मान करता हूॅ। मैंने उन्हें सलाह दी थी कि समस्या व्यक्तियों में नहीं है बल्कि व्यवस्था में है। यदि शक्तियां कहीं इक्ट्ठी होंगी तो भ्रष्टाचार के अवसर पैदा होंगे ही। शक्तियों का विकेन्द्रीयकरण या अकेन्द्रियकरण ही भ्रष्टाचार की उत्पत्ति के अवसर कम कर सकता है और जब भ्रष्टाचार एक प्रतिशत तक आ जाये तब उस पर कानून से आक्रमण किया जा सकता है। विधायिका ने न्यायपालिका की शक्तियां छीन छीन कर अपने पास इक्ट्ठी करनी शुरु की तब उस शक्ति एकत्रीकरण को बाधित करने के उद्देश्य से जस्टिस भगवती ने जनहित याचिकाओं को सुनने का जो असंवैधानिक अधिकार न्यायपालिका को दिया था उसकी बहुत प्रशंसा हुई किन्तु उस अधिकार का जिस तरह न्यायपालिका दुरुपयोग करनी लगी उसी से यह स्पष्ट है कि न्यायपालिका में भ्रष्टाचार बढ रहा है। जिस तरह न्यायपालिका अपने को सर्वोच्च प्रमाणित करने का प्रयास कर रही है वह भी उस पर संदेह करने का आधार बनाती है। न्यायपालिका को न्यायधीश नियुक्ति के मामले को भी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना चाहिए था। बात बात में न्यायालय की अवमानना की धमकी देना भी लोकतांत्रिक आतंकवाद माना जा सकता है। मैं समझता हूॅ कि भ्रष्ट विधायिका है या न्यायपालिका अथवा कार्यपालिका है यह महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं है ये तीनों ही एक दूसरे को भ्रष्ट प्रमाणित करते रहेंगे। जबकि भ्रष्ट लोगों की संख्या 90 से 99 प्रतिशत तक है। तो यह प्रश्न नहीं है कि कौन कम है और कौन ज्यादा। भ्रष्टाचार शक्ति के केन्द्रियकरण में है और शक्ति का विकेन्द्रियकरण अथवा अकेन्द्रियकरण ही इसका समाधान हो सकता है । यदि न्यायपालिका में कुछ लोग वास्तव में भ्रष्टाचार दूर करना चाहते है तो उन्हें सबसे पहले अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण करने की पहल करनी चाहिए।

जम्मू काश्मीर के पूर्व मूख्य मंत्री फारूख अब्दुल्ला ने कहा है कि पाक अधिकृत काश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा है और भारत को उस पर दावा नहीं करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि भारत के पास जितना कश्मीर है वह अधिकृत रूप से भारत का है।

मैं समझता हूॅ कि फारूख अब्दुल्ला की अप्रत्यक्ष सहानूभूति पाकिस्तान के साथ अधिक है भारत के साथ कम। श्री अब्दुल्ला ने जो बात कही है वह बात सही है किन्तु कहने का तरीका विपरीत है। उन्हें भारत को सलाह न देकर पाकिस्तान को यह सलाह देनी चाहिये थी कि भारत और पाकिस्तान कभी युद्ध नहीं जीत सकते । इसलिये पाकिस्तान को चाहिये कि वह कश्मीर को भारत का हिस्सा मान ले और भारत के लोग भारत को सहमत कर लेंगे कि वह पाक अधिकृत कश्मीर को पाकिस्तान का मान लें । दुनियां जानती है कि भारत ने पाक अधिकृत कश्मीर पर कभी अपना दावा करने की पहल नही की है बल्कि पाकिस्तान के दावे के विरूद्ध दावा किया है । भारत ने पाकिस्तान को बता दिया है कि यदि पाकिस्तान भारत को अस्थिर करेगा तो उसका परिणाम उसके लिये भी अच्छा नही होगा। अब जब मोदी सरकार जोर शोर से पाक अधिकृत कश्मीर पर दबाव बना रही है तब श्री अब्दुल्ला का यह कथन उनकी निष्ठा पर संदेह व्यक्त करता है।

सुरेश चंद्र शर्मा, स्वतत्र पत्रकार, मेरठ उत्तर प्रदेश

विचार—आज ही आपका पत्र मिला, तदनुसार अविलम्ब उत्तर प्रेषित कर रहा हूॅ। कई माह से ज्ञान तत्व नहीं मिल रहा है। मै आपके प्रत्येक निर्देश, प्रस्ताव, का सहमत रहा हूॅ। किन्तु वर्तमान व्यवस्था को देखते हुए भी इसे कार्यान्वित करने का कष्ट करे। पुनः आपके ग्राम संसद अभियान एंव लोक प्रदेश हेतु सहमति एंव स्वीकृति है।
अगस्त क्रान्ति के शुभ अवसर पर।
बिना क्रान्ति शान्ति नहीं होती।।
जिन्दगी भीख में नहीं मिलती।
जिन्दगी बढ़कर छीनी जाती।।

उत्तर— आपने लिखा कि जिन्दगी भीख में नहीं मिलती बढकर छीनी जाती है। मैं इसका आशय नहीं समझा। जिन्दगी कभी छीनी नहीं जाती बल्कि मिलती तो प्राकृतिक रूप से है और सुरक्षित रखने के लिये विशेष प्रयत्न करने पडते है। जब तानाशाही हो तब भिन्न प्रकार के प्रयत्न होते है और लोकतंत्र में भिन्न प्रकार के प्रयत्न होते है। तानाशाही में जिंदगी को छीनने के अवसर ही नहीं मिलते और लोकतंत्र में उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। मेरा

सुझाव है कि आप अपने इस कथन पर फिर से विचार करें। आपने ग्राम संसद अभियान की लोक प्रदेश समिति की सदस्यता हेतु सहमति दी है। उससे हमारा उत्साह बढा है। आपकी सक्रियता अवश्य ही अच्छे परिणाम देगी।

सत्यभान शर्मा बरेली

प्रश्न—प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी दलितों पर हो रहे हमले और अत्याचार की घटनाओं पर भावुक हो गये और कहा मारना है तो मुझे गोली मार दो दलितों पर हमले बंद करो। प्रधानमंत्री के इस से यह स्पष्ट है कि देश में सत्ता परिवर्तन हुआ है व्यवस्था परिवर्तन नहीं। विविधताओं से भरा 125 करोड की आबादी के देश में ऐसी घटनाये होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जहां जो शक्तिशाली है वहॉ वह निर्बल का शोषण उत्पीडन कर रहा है। शासन उसको रोकने मे असमर्थ हैं काश्मीर में अल्पसंख्यक हिन्दुओं पर इतने अत्याचार और जुल्म हो रहे है कि उन्हें वहां से भागने के लिये मजबूर होना पड रहा है। इसी तरह उत्तर प्रदेश के मुस्लिम बाहुल्य कस्बों से हिन्दुओं का पलायन हुआ। वोट बैक के आगे न्याय व्यवस्था असफल हैं दलितों की परिभाषा क्या है राजनैतिक दल दलित सर्वण हिन्दू मुस्लिम बहुसंख्यक, अल्प संख्यक का राग अलाप करके देश में सामाजिक समरसता को नष्ट कर रहे है। शासक अपने को संस्कृति और संतो से महान मानने लगे है। शासक अहंकारी और संवेदनहीन है। स्वार्थी है। आप जैसे निष्पक्ष साहसी दुरदर्शी विचारक से निवेदन है कि अपने विचारो से अवगत कराये।

उत्तर— आपने जो परिस्थितियां लिखी है उसमे तो मेरी सहमति है किन्तु सुझाव से सहमति नहीं। अच्छा या बुरा होना व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वाभाव होता है समूहगत नहीं पारिवारिक और सामाजिक संस्कार उस व्यक्तिगत स्वाभाव में आंशिक ही बदलाव कर सकते है गंभीर नहीं जिस तरह शासक अपने को संतो से भी उपर समझने लगे है उसी तरह संत भी अपने को भगवान से कम नहीं मानते। राज नेताओं की तुलना में संतो का पतन अधिक हुआ है। बड़े—बड़े संत राजनेताओं के सामने भीख का कटोरा लिये खड़े दिखते है। आज समाज में जो पतन दिख रहा है उसमे संतो की भूमिका भी कम नही है। मेरे विचार से इन सब समस्याओं का समाधान समान नागरिक संहिता से हो सकता है। समाज में व्यक्ति एक इकाई हो हिन्दू मुसलमान आदिवासी हरिजन सवर्ण अवर्ण महिला पुरूष के अधिकार व्यक्ति के रूप मे समान होने चाहिये। राज्य को इसमे किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप तब तक नहीं करना चाहिये जबतक उस व्यक्ति ने कोई अपराध न किया हों संतो का काम ऐसे लोगो का हृदय परिवर्तन करना। समाज का काम है ऐसे लोगो को अनुशासित करना और राज्य का काम है किसी की न मानने वालों को दंडित करना। जब राज्य ही समाज को महिला पुरूष हिन्दू मुस्लिम अवर्ण—सवर्ण में बांटकर उन्हें लड़ाने भिड़ाने का काम करेगा तो समस्या विकराल होगी ही जैसे अभी हो रही है।